Since March 2002
An International, Registered & Referred Monthly Journal : Hindi Literature
Research Link - 159, Vol - XVI (4), June - 2017, Page No. 48-50
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

जयशंकर प्रसाद की कहानियों में ईमान का संदेश

प्रस्तुत शोधपत्र हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठ नाटककार एवं कथाकार जयशंकर प्रसाद की कहानियों में ईमान के संदेश की पड़ताल की गई है। जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित सत्तर कहानियाँ, पाँच कहानी संग्रहों - छाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप, आँधी तथा इन्द्र जाल में संकलित है। मानव मूल्यों में ईमान का अतुलनीय योगदान होता है। समाज में ईमान का महत्व बताना नितांत आवश्यक है। यूं तो साहित्य की हर विधा में प्रसादजी ने ईमानदारी और ईमानदारों का बड़े ही रोचक अंदाज में प्रस्तुतिकरण किया है, तथापित उनकी कहानियों में जो चित्रण मिलता है, वह निश्चित ही पाठकों को अत्यंत ईमानदार बनने की प्रेरणा देता है।

मोहम्मद अली

हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठ कवि, नाटककार एवं कथाकार जयशंकर प्रसाद (1946–94) द्वारा रचित, सत्तर कहानियाँ, पाँच कहानी संग्रहों– छाया, प्रतिध्वरनि, आकाशदीप, 'आंधी' तथा 'इन्द्र जाल' में संकलित है। आपके द्वारा रचित समस्त कहानियाँ ऐतिहासिक, समस्या मूलक, मनोविज्ञानिक, भावात्मक, प्रतीकात्मक, स्वछन्दतापरक, यथार्थपरक तथा आदर्शमूलक सिद्धांतों और परिवेश को दृष्टि में रखकर ही रची गई हैं। आपकी सशक्त लेखनी से निकली इन कहानियों में से चुनकर उनकी कुछ श्रेष्ठ कथाओं को इस संकलन में संकलित किया गया है। इन कहानियों में जहाँ एक ओर क्षमा, शांति, धैर्य, आक्रोध, आत्मनसंयम, पवित्रता, इन्द्रिय निग्रह, सत्य, सदाचार, जातीयता, राष्ट्रप्रेम, आतिथ्य, त्याग, दानशीलता, परोपकार व आज्ञापालिता आदि गुणों को उभारा गया है, वहीं दूसरी ओर मानव मन का सूक्ष्मा व भावात्मक चित्रण भी प्रस्तुत किया गया है। यूँ तो आप शारीरिक रूप से हमारे मध्य नहीं है, किंतु आपकी कहानियाँ मानव मन के लिए अत्यंत रूचिकर है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत शोधपत्र लिखा जा रहा है, ताकि पाठकगण की वर्तमान पीढ़ी को उनकी प्रासांगिकता से परिचित करा सकें।

प्रस्तुत शीर्षक के अंतर्गत, हम उन पहलुओं पर चर्चा करने जा रहे हैं, जिनसे हमें ईमान का बोध होता है। मानव मूल्यों में ईमान का अतुलनीय योगदान होता है। समाज में ईमान का महत्वन बताना नितांत आवश्यक है। यूँ तो साहित्य की हर विधा में प्रसादजी ने ईमानदारी और ईमानदारों का बड़े ही रोचक अंदाज में प्रस्तुतीकरण किया है, तथापि, उनकी कहानियों में जो चित्रण मिलता है, वह निश्चित ही पाठकों को अत्यंत ईमानदार बनने की प्रेरणा देता है।

'ममता' कहानी को ही लीजिये। इस कहानी में ब्राह्मण चूणामणि की विधवा बेटी ममता न सिर्फ अपने लालची पिता को ईमानदार बनने की सलाह देती है, बल्कि अपनी स्वयं की ईमानदारी से अपने स्वजनों सहित अन्य दर्शकों को भी हृदय से झकझोर देती है। अनेक संकटों को झेलती है, अनेक झंझावादों से मुकाबला करती है, परन्तु वह एक पल के लिए भी अपना ईमान नहीं खोना चाहती। आखिरी सांस तक वह ईमानदार बनी रहती है। उसके पिता ने भरसक समझाने का प्रयत्न किया कि वह चाँदी के थालों को स्वीकार कर ले, परन्तु वह तैयार नहीं होती। देखिये कहानी के कुछ अंश, "एक पहर बीत जाने पर वे फिर ममता के पास आए। उस समय उनके पीछे दस सेवक चाँदी के बड़े थालों में कुछ लिए खड़े थे। कितने ही मनुष्यों के पद– शब्द सुन ममता ने घूमकर देखा। मन्त्री ने सब थालों को रखने का संकेत किया। अनुचर थाल रखकर चले गए। ममता ने पूछा, 'यह क्या है पिताजी...?'

'तेरे लिए बेटी! उपहार!' कहकर चूड़ामणि ने उसका आवरण उलट दिया। स्वर्ण का पीलापन उस सुनहली संध्या में विकीर्ण होने लगा। ममता चौंक उठी, 'इतना स्वर्ण....! यह कहाँ से आया?' 'चुप रहो ममता, यह तुम्हारे लिए है!' 'तो क्या आपने म्लेच्छ का उत्कोच स्वीकार कर लिया? पिताजी यह अनर्थ है, अर्थ नहीं। लौटा दीजिए! पिताजी! हम लोग ब्राह्मण हैं, इतना सोना लेकर क्या करेंगे ?' 'इस पतनोन्मुख प्राचीन सामन्त– वंश का अन्त समीप है, बेटी किसी भी दिन शेरशाह रोहिताश्व पर अधिकार कर सकता है, उस दिन मंत्रित्व न रहेगा, तब के लिए बेटी! 'हे भगवान! तब के लिए! विपद के लिए! इतना आयोजन! परम पिता की इच्छा के विरूद्ध इतना साहस! पिताजी, क्या! भीख न मिलेगी? क्या कोई हिन्दू भू– पृष्ठ पर न बचा रह जाएगा, जो ब्राह्मण को दो मुट्ठी अन्न दे सके? यह असम्भव है। फेर दीजिए पिताजी, मैं काँप रही हूँ– इसकी चमक आँखों को अन्धा बना रही है।"(1)

सहायक प्राध्यापक (हिन्दी विभाग), शासकीय प्रथम श्रेणी स्नातक महाविद्यालय, सोराबा, जिला-शिमोग्गा (कर्नाटक)

एक बार की बात है, युवा हुमायूँ ममता की झोंपड़ी में आकर रूकते हैं। असहाय हुमायूँ को विपत्तिकाल में ममता ने उसे शरण दी, इसके एबज में वह सोच रहा था कि आगे चलकर उस झोंपड़ी को अच्छे मकान में तब्दील किया जाए। हुमायूँ ने मिरजा को आदेश दिया था कि जिस झोंपड़ी में उसने विपत्तिकाल में विश्राम पाया था, वहां जाकर एक अच्छा मकान बनवा देना। सैंतालीस साल बाद मिरजा ने उस काम को अंजाम देने के लिए अपने नुमाइंदे भेजे। एक अश्वाछरोही को यह जाँच– पड़ताल के लिये भेजा गया कि वह ढूढ़े कि शहंशाह किस छप्पर के नीचे बैठे थे। इत्तफाक से वह अश्वरोही उसी जगह आ गया, जहाँ ममता अपना बुढ़ापा काट रही थी। देखिये उस अश्वरोही और ममता के मध्य हुई अल्प वार्ता के अंश :

"अश्वारोही पास आया, ममता ने रुक–रुककर कहा, 'मैं नहीं जानती कि वह शहंशाह था या साधारण मुगल, पर एक दिन इसी झोंपड़ी के नीचे वह रहा। मैंने सुना था कि वह मेरा घर बनवाने की आज्ञा दे चुका था। मैं आजीवन अपनी झोंपड़ी खोदवाने के डर से भयभीत थी। भगवान ने सुन लिया, मैं आज इसे छोड़ जाती हूँ। अब तुम इसका मकान बनाओ या महल, मैं अपने चिर–विश्राम गृह में जाती हूँ'। वह अश्वतरोही अवाक खड़ा था। बुढ़िया के प्राण–पक्षी अनंत में उड़ गए।"[2]

यह तो रही एक प्रकार की ईमानदारी जो अर्थ से जुड़ी है। लोग कहते हैं, अर्थ ही सब कुछ है, कुछ कहते हैं, यह बहुत कुछ है। ममता के ईमान को केन्द्रत बिन्दु बनाया जाए तो कुछ और ही कहना होगा, अर्थ के बारे में शायद कहना होगा कि यद्यपि अर्थ सब कुछ है, बहुत कुछ है, लेकिन यथोचित तरीके से बिना कमाया हुआ अर्थ कुछ भी नहीं है।

अब बात करते हैं, 'आँधी' शीर्षक कहानी की जिसमें चारित्रिक ईमान का अनूठा संदेश है। इस कहानी में लैला नामक नायिका रामेश्वंर नामक युवक को इकतरफा प्यार करने लगती है। उसका प्यार इस हद तक बढ़ जाता है कि वह अपने अरमानों को, अपनी भावनाओं को रामेश्वर तक पत्र के माध्यम से पहुँचाना चाहती है। बेचारी लैला पढ़ी–लिखी न थी, इसलिए वह किसी अन्य पुरूष से पत्र लिखवाती है और प्रेषित कर देती है। पत्र पढ़ने के उपरान्त रामेश्वर के दिल और दिमाग में जो प्रतिक्रिया होती है, वह हम पाठकगण को चारित्रिक ईमान की अनोखी प्रेरणा देती है। पत्र के प्रत्युत्तर में रामेश्वर लिखता है :

"तुमने मुझे आमंत्रित किया है, प्रेम के स्वतंत्र साम्राज्य में घूमने के लिए। तुम जानती हो, मुझे जीवन के ठोस झंझटों से छुट्टी नहीं। घर में मेरी स्त्री है, तीन–तीन बच्चे हैं, उन सब के लिए मुझे घटना पड़ता है, काम करना पड़ता है। यदि वैसा न भी होता तो भी मैं क्यों तुम्हारे जीवन को अपने साथ घसीटने में समर्थ होता? तुम स्वतंत्र वन विहंगिनी और मैं एक हिन्दू गृहस्थ, अनेक रूकावटें, बीसों बन्धन। यह सब असम्भव है। तुम भूल जाओ। जो स्वप्न तुम देख रही हो, उसमें केवल हम और तुम हैं, संसार का आभाष नहीं।"[3]

उक्त शब्दों में रामेश्वर द्वारा जो सीख लैला को दी गई है, वह न सिर्फ एक स्त्री को है, बल्कि ऐसी अनेक स्त्रियों के लिए भी है, जो भावनाओं में बहकर पर पुरूष से तथाकथित प्यार कर बैठती है। इतना ही नहीं यह सीख उन अनेक ऐसे पुरूषों के लिए भी हैं, जो ऐसी भावुक महिलाओं की जिंदगी के साथ खिलवाड़ करने की फिराक में रहते हैं। ऐसे परस्त्रीगामी पुरूष न सिर्फ एक भावुक स्त्री का जीवन खराब कर देते हैं, बल्कि स्वयं की पत्नी व बच्चों को भी बर्बादी के कुएँ में धकेल देते हैं।

'उस पार का योगी' नामक कहानी में प्रसाद जी ने ईमान का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है। इस कहानी में नन्दीलाल और नलिनी के प्रेम–प्रसंग को चित्रित किया गया है। वे दोनों शैशव काल से ही स्नेह करते हैं। युवावस्थार आने तक उनमें भावनात्मपक प्रेम हो जाता है। अचानक दोनों का वियोग हो जाता है। वियोग का संताप नंदलाल अपनी सितारी की संगति से दूर करता है। वह एकांत में सितारी बजाता है और मन बहला लेता है। उसका ईमान उसे अन्य स्त्री के प्रति खिचने व स्नेह करने की अनुमति नहीं देता। पवन, प्रकृति, नदी, सितारी आदि सब उसके जीवन का सहारा बन जाते हैं।

'पाप की पराजय' कहानी में ईमान का जो चित्रण किया गया है। वह देखते ही बनता है। घनश्याम नायक ने भले ही भिल्लिनी के प्रति कामवासना को लेकर कुदृष्टि डाली हो, लेकिन वह एक रूप वान नारी के सौंदर्य को देखकर विचलित नहीं होता। अकाल की मार के कारण वह रूपवान नारी अपना सौंदर्य बेचना चाहती है। उसे विश्वास है कि उसके शरीर को कृय करने वाले जो दाम देंगे, उसका उपयोग वह अपने आश्रितों की भूख मिटाने में करेगी। देखिये रानी के शब्द :

"मैं यहाँ की रानी हूँ। मेरे वस्त्र–आभूषण भण्डार में जो कुछ भी था, सब बेचकर तीन महीने किसी प्रकार उन्हें खिला सकी, अब मेरे पास केवल इस वस्त्र को छोड़कर और कुछ भी नहीं रहा कि विक्रय करके एक भी क्षुधित पेट की ज्वाला बुझाती, इसलिए. .....शहर चलूंगी। सुना है कि वहाँ रूप का भी दाम मिलता है।"[4]

घनश्याम की पत्नी का देहान्तव हो चुका था, इसलिए रानी ने सोचा कि उसके रूप के क्रय का इससे अच्छा आदमी और कोई न होगा। वह उससे अपने रूप विक्रय की चर्चा करने लगी। देखिये रानी के शब्द :

"तब तो अच्छा हुआ, तुम नगर के धनी हो। तुम्हें तो रूप की आवश्यकता होती होगी, क्या इसे क्रय करोगे?"[5]

रानी की बात सुनकर घनश्याम का सिर शर्म के मारे नीचा हो गया। वह कुछ उत्तर न दे सका। रानी ने उसके हावभाव देखे और पूछने लगी – "उस दिन तो एक भिल्लनी के रूप पर मरते थे, क्यों, आज क्या हुआ?"[6]

रानी की मजबूरी उसे बेशर्म बनाती जा रही थी, परंतु घनश्याम अपने अतीत के पापों का प्रायश्चित कर रहा था। वह और कोई नया पाप नहीं करना चाहता था, इसलिए असंतुलित हुए बिना ही दबी आवाज में रानी के प्रश्नों का उत्तर देता जा रहा था। देखिये, घनश्याम के शब्द :

"देवी, मेरा साहस नहीं है– वह पाप का वेग था।"[7]

इतने पर भी रानी को तरस नहीं आया और वह उसे उकसाती रही, कहने लगी – "यदि पाप के लिए साहस था और पुण्य के लिए नहीं?"[8]

इन शब्दों को सुनकर घनश्याम का धैर्य टूट पड़ा –

"घनश्यापम रो पड़ा और बोला, क्षमा कीजियेगा। पुण्य किस प्रकार सम्पादित होता है, मुझे नहीं मालूम, किंतु इसे पुण्यों कहने में....." [9]

आखिर घनश्याम विचलित नहीं हुआ। अनेक प्रयासों के बाद भी रानी उसके ईमान को नहीं डिगा सकी।

'व्रत भंग' कहानी को ही ले लीजिए? इसमें कपिंजल व नन्दन दो मित्र हैं। ये गुरूकुल के अच्छे साथी हैं। कपिंजल उच्च कुलीन व घनाढ्य का बेटा है, नन्दन एक दरिद्र परिवार से। निःसंदेह कपिंजल, नन्दन के प्रति सदैव विनम्र, दयावान व मददगार साबित हुआ है। उसे अपनी धनाढ्यता का जरा सा भी अभिमान नहीं है। वह नन्दन जैसे मित्र को न छोड़ना चाहता और ना ही भूलाना चाहता है, किंतु नन्दन एक स्वावलम्बी इंसान बनना चाहता है।

वह किसी की कृपा पर जीवित नहीं रहना चाहता। एक दिन कपिंजल व नन्दन के मध्य जो वार्ता होती है, उससे साफ अंदाजा लगाया जा सकता है कि दोनों में कितनी प्रगाढ़ता रही होगी। कपिंजल कहता है :

"अँह! कुछ नहीं। उस दिन की बात आजीवन भूलाई नहीं जा सकती, नन्दन। अब मेरे लिए तुम्हारा और तुम्हारे लिए मेरा कोई अस्तित्व नहीं। वह अतीत स्वप्न, है, समझे?" [10]

नन्दन कहता है :

"हाँ हाँ, मैं जानता हूँ, मुझे दरिद्र युवक समझकर मेरे ऊपर कृपा रखते थे, किंतु उसमें कितना तीक्ष्ण अपमान था, उसका मुझे अब अनुभव हुआ। .....मैं उस प्रार्थना की उपेक्षा करता हूँ। तुम्हारे पास ऐश्वर्य का दर्प है, तो अकिंचनता उससे कहीं अधिक गर्व रखती है।..... मैं दरिद्रता को भी दिखला दूंगा कि मैं क्या हूँ। इस पाखण्ड–संसार को बाध्य करूँगा, झुकने के लिए।" [11]

इस तरह की अनेक कहानियों की रचना की है, प्रसाद जी ने जो ईमान की शिक्षा से लवरेज है।

संदर्भ :

(1) जयशंकर प्रसाद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, रजत प्रकाशन, दिल्ली गेट, मेरठ, पृष्ठ 07.

(2) *वही, 09.*

(3) *वही, 26.*

(4) *वही, 107.*

(5) *वही, 108.*

(6) *वही, 108.*

(7) *वही, 108.*

(8) *वही, 108.*

(9) *वही, 108.*

(10) *वही, 109.*

(11) *वही, 109.*

❁ ❁

Since March 2002
An International, Registered & Referred Monthly Journal : Hindi Literature
Research Link - 159, Vol - XVI (4), June - 2017, Page No. 51-53
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

दार्शनिक चिंतन एवं सामाजिक जीवन के प्रति उदात्त दृष्टिकोण के संदर्भ तथा मीराबाई की रचनात्मकता

प्रस्तुत शोधपत्र में दार्शनिक चिंतन एवं सामाजिक जीवन के प्रति उदात्त दृष्टिकोण के संदर्भ तथा मीराबाई की रचनात्मकता का अध्ययन किया गया है। मीरा की रचनाएँ दार्शनिकता एवं विद्रोह की भावभूमि पर स्थित है तथा उनमें मानव समाज के उत्थान के लिए अनेक विचार सरणियाँ विद्यमान हैं। भक्ति काव्य के प्रभाव से मीरा के काव्य को कृष्णभक्ति परंपरा के अंतर्गत रखा गया, जिससे उनके काव्य में सामाजिक और राजनीतिक क्रांति के जो संदर्भ आए उनको एक वर्ग विशेष द्वारा सामने नहीं आने दिया गया। मीरा की रचनाएँ केवल कृष्ण भक्ति के रस में ही सराबोर नहीं हैं, बल्कि उनमें स्त्री जीवन की व्यथा का विश्लेषण भी है, जो समाज को अपनी संस्कृति और चिंतन के प्रति पुनः सोचने-विचारने को विवश करता है। मीरा को हम स्त्री मुक्ति की आंदोलनकर्ता के रुप में भी देखते हैं, जिसमें भारतीय जीवन में पितृसत्ता की जकड़नों में कैद स्त्री को अपने अस्तित्व का बोध कराया। प्रस्तुत शोधपत्र में मीरा की रचनाओं में सामाजिक-राजनीतिक विमर्श की विवेचना की गई है, जिससे एक महान कवयित्री की रचनाओं का आधुनिक जीवन के परिप्रेक्ष्य में समग्रता का अन्वेषण किया जा सके।

कुँजी शब्द : भक्ति काव्य, पितृसत्ता, विद्रोह, स्त्री मुक्ति, अस्मिता, स्त्री समाज एवं परंपरा।

डॉ.नेहा

मीरा की रचनाओं पर बात करने से पहले उनकी व्यक्तिगत पृष्ठभूमि को समझना प्रासंगिक होगा। कैसे एक स्त्री राजसी सुखों के बावजूद वैराग्य में रम गई और सामंती रूढियों के विरूद्ध प्रतिरोध का शंखनाद करती है। कृष्णभक्ति शाखा की रचनाकार मीरा का जन्म जोधपुर राजघराने में मध्यकालीन सामंती संस्कृति के बीच हुआ था। मीरा का रचनाकाल मध्ययुग में आता है। उनकी रचनाओं में कृष्णभक्ति के साथ मध्ययुग के जीवन में स्त्री की विवशताओं का प्रतिबिंबन भी मिलता है। मीरा राजस्थान के दो प्रमुख राजघराओं से जुड़ी रही थीं। उनका जन्म राठौर राजवंश में हुआ, तो उनका विवाह सिसौदिया राजवंश के राजकुमार से किया गया था। ये दोनों ही राजघराने तत्कालीन राजस्थान की राजनीतिक सत्ता के केंद्र में थे। महान राजाओं के विरासतों को उनके उत्तराधिकारियों ने अपने विलास और मद में पतन के कगार पर ला छोड़ा था। राज–परिवारों की सारी ऊर्जा महलों में होने वाले षड्यंत्रों से ही बीत जाया करती थी।

मीरा के परिवार के योद्धाओं ने राजस्थान में स्वाभिमान और परंपरा की खातिर अपने प्राणों का बलिदान किया था। उनकी वीरता का प्रभाव मीरा के मन पर भी पड़ता था। पति राजा भोजराज के दुख के साथ मीरा ने अपने राज्य को विवशता और पराजय के क्षणों में डूबे हुए देखा था। मीरा का अंतर्मन कुछ अलग तरह के तत्वों से बना हुआ था। उन्हें राजनीतिक दाव–पेंचों में कोई रूचि नहीं थी। **डॉ. वीरेंद्र सिंह यादव** के अनुसार–''बदलते परम्परा के प्रतिमानों में मध्यकाल की कवयित्री मीरा अपनी लोकप्रयिता में बेमिसाल हैं। इनका महत्व उस विद्रोही चेतना की अभिव्यक्ति में है, जो उस समय सामन्तवाद के विरुद्ध पनप रहा था। मीरा अपनी जीवनचर्या और कविता दोनों से परम्परावादी, सनातनी व्यवस्था की जड़ता, थोथी कुल मर्यादा और जाति–पाँति की जकड़बन्दी को तोड़ती हैं। सामन्ती आभिजात्य को ठोकर मारकर विद्वतजनों का सत्संग करती है और जनसाधारण के बीच बेधड़क विचरण करती हैं। मीरा की असाधारण लोकप्रयिता का रहस्य जनसाधारण से तादात्म्य में है। जनसामान्य मीरा के गीतों में अपनी भावनाओं की सीधी–सच्ची अभिव्यक्ति पाता है।''[1]

मीरा का मानस दार्शनिकता और सृजनात्मक तत्वों से निर्मित था। वे राजघराने के अंतर्कलहों से विमुख ही रहीं। गुरू रैदास ने उनके चिंतन को अग्रिम दिशा की ओर मोड़ दिया था। राज्य में होने वाली कूटनीति और भौतिक संसाधनों के प्रति उनमें कोई आकर्षण पैदा नहीं हुआ। उसी वातावरण में वे कृष्ण की भक्ति की तरफ उन्मुख हुई और रचनाओं के माध्यम में अपना सर्वस्व आराध्य को समर्पित कर दिया। मीरा भक्ति के उस मार्ग पर चली गई थी जहाँ व्यक्ति स्वत्व का बोध विस्मृत कर देता है, जहाँ स्व और पर का पारस्परिक भेद समाप्त हो जाता है। मीरा की भक्ति का भाव इतना भावपरक एवं गहन था कि उनके आंतरिक

सहायक प्राध्यापक (हिन्दी विभाग), हरपाल सिंह कन्या महाविद्यालय, बिवार, जिला-हमीरपुर

परिवेश में चराचर विश्व की सारी कलुषताएँ माधुर्य में बदल गई थीं। भक्ति का यह स्वर की और पूर्ण समर्पण कि उनके कंठ से फूट उठा– मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई। यह किसी भक्त का अपने आराध्य के प्रति निष्ठाभाव नहीं था, बल्कि यह प्राणी मात्र का अपने स्रष्टा के प्रति आभार था। जीव और जगत के संबंध को समझने से ही इस तरह के पदों के भाव स्पष्ट हो पाते हैं। यही चेतना एवं चिंतन की धारा उनकी कविताओं को समाज से संबद्ध भी करती हैं।

मीरा के काव्य चिंतन पर तत्कालीन समाज की समस्याओं एवं विसंगतियों का प्रभाव पड़ा था। कहाँ वीरता के गौरव से मंडित उनका मेवाड़ और कहाँ राजपरिवार में राज्य चलाने में नाकाम और विलासी उत्तराधिकारी। राजा विक्रमादित्य की अक्षमताओं एवं कायरता से राज्य में अंधकार व्याप्त हो गया था। इस संबंध में मीरा लिखती हैं कि शासन निपट अज्ञानी राजा के हाथ में है और बुद्धिमान जन दधर–उधर विचरण कर रहे हैं।[2] मीरा खुद को मेवाड़ की महान व जनहितैषी परंपरा से संबद्ध मानती थीं। उनकी पीड़ा का कारण यह भी था कि जो राज्य अपने उदात्त एवं परोपकारी संस्कारों से पहचाना जाना चाहिए, जहाँ विद्वानों का उचित सम्मान होना चाहिए, वहाँ दुष्ट और आलसी लोग सत्ता पर काबिज हो गए हैं। मीरा इस वातावरण से व्यथित होकर लिखती हैं कि राणा तुम्हारे देश में मुझे कुछ नहीं भाता है क्योंकि यहाँ के लोग कूड़े के समान हैं :

"नहिं भावै थारो देसड़लो रंग रुड़ो
थारे देस में राणा साध नहीं छै
लोग बसै सब कूड़ो।" [3]

मीरा ने अपने व्यक्तिगत जीवन में पारंपरिक बंधनों को मानने से इनकार किया था। पति की मृत्यु के बाद उन्होंने रूढ़ियों को अस्वीकृत किया। इस पर परिवार और समाज की नाराजगी उन्हें झेलनी पड़ी। मीरा कोई कमजोर स्त्री नहीं थी कि परिवार के दबाव में पराजित हो जाती। वे चाहती तो पूरा जीवन सुख–साधनों का आनंद उठा सकती थीं, लेकिन उन्होंने वैराग्य भरा कष्टप्रद जीवन स्वीकार किया और राजपरिवार से नाता तोड़ा। वस्तुतः कृष्णभक्ति के प्रति उनकी आसक्ति को हम जीवन के तात्विक चिंतन के प्रति अनुराग के माध्यम से समझ सकते हैं। **डॉ. वीरेंद्र सिंह यादव** लिखते हैं– "मीरा ने अपने काव्य और आचरण के द्वारा पारम्परिक सामाजिक ढ़ाँचे और सामन्ती मूल्यों को जबर्दस्त चुनौती दी। परम्परावादी पुरुषतंत्रात्मक समाज और खोखला सामंती अहंकार कितना क्रूर और अमानवीय हो सकता है, यह मीरा की दारुण शारीरिक–मानसिक पीड़ा के चीत्कार में समाहित है। आध्यात्मिक तड़प के समानान्तरण सांसारिक ताप उनको दग्ध करता रहा और मीरा गिरधर नागर की पुकार लगाती रहीं। पारिवारिक और सामाजिक स्तर पर मीरा द्वारा रूढ़ियों को दी गयी चुनौती सामाजिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व रखती है। मेवाड़ के राणाओं के प्रशस्ति गीत गाने के प्रति हिन्दी कवियों की उपेक्षा और उदासीनता का एक यह भी कारण हो सकता है। साम्प्रदायिक कट्टरता और सामंती क्रूरता का सफल प्रतिरोध करते हुए मीरा ने जीवन की अर्थवेत्ता मानवीय प्रेम और कृष्ण भक्ति में तलाशा। दुनियावी चकाचौंध की निस्सारता का संकेत उनकी कविताएँ करती हैं। उसमें आध्यात्मिक संकेत के साथ सामाजिक संदर्भ भी गुँथे हैं।"[4]

देखा जाए तो राजस्थानी समाज में सामंती और पितृसत्तात्मक रूढ़ियों का प्रभुत्व रहा है। वहाँ पिछड़े वर्ग की स्त्रियों की तो क्या बात की जाए राजघराने की स्त्रियों को भी पुरुष के निचले दर्जे की चीज समझा जाता है। स्त्री के प्रति संवेदनहीनता और शोषण सामंती व्यवस्था की पहचान होते हैं, जो स्त्री के मन को नहीं देखती, बल्कि उसके तन से भोग का आनंद उठाना ही पुरुष का ध्येय होता है। मीरा के काव्य को तराशने में तत्कालीन सामाजिक आर्थिक विसंगतियाँ भी प्रभावी रहीं। कवयित्री मीरा बिना किसी दबाव या भय के उद्घोषणा करती हैं कि उन्होंने तो वैवाहिक सुखों एवं बंधनों की ओढ़नी की बजाय वैराग्य एवं भक्ति की लोई ओढ़ ली है और लोक लाज के डर की बजाय वे भक्ति के रास्ते पर संतों के सान्निध्य में रहना चाहती हैं :

'चूनरी से किए टूक, ओढ़ लीन्ह लोई।
संतन ढिंग बैठि–बैठि लोक लाज खोई।
मीरा राम लगन लागी होना हो सो होई।" [5]

मीरा ने स्त्री होने के कारण जो कष्ट और दमन का सामना किया, उनसे वे निराश न होकर सृजन के रास्ते पर आगे बढ़ती गईं। उन्होंने आतंरिक दुखों एवं पीड़ाओं को ही साहित्य सृजन की प्रेरणा बना लिया था। उस दौर में सामंती व्यवस्था अपने पराभव के रास्ते पर आगे बढ़ रही थी और पतनोन्मुख राजवंश के ठाट–बाट की वास्तविकता को वे समझ चुकी थीं। यही वजह है कि मीरा ने विलास और भौतिकता की जगह प्रेम का मार्ग ग्रहण किया। सुविधाओं के बदले वैराग्य और सादगी को स्वीकार किया, क्योंकि यही मार्ग तो उनके आराध्य कृष्ण की भक्ति के रंग को गहरा कर सकता था। मीरा तो मानो यही घोषणा करती हैं कि उन्होंने तो अपने साँवरे को चोरी–छिपे नहीं, बल्कि पूरे जगत के सामने खुशी के साथ स्वीकार किया है।

मीरा सामंती परंपरा के मूल में विद्यमान कमजोरियों को समझती थीं, क्योंकि वह केंद्रीय सत्ता की भित्ति होती थी। इसमें राजा की शक्ति और सामर्थ्य से ही जीवन की धारा प्रभावित होती थी। राजा तक जाने के लिए सामंती बाधा को पार करना पड़ता था। न्याय पाना बहुत मुश्किल होता था, क्योंकि सामंतों के चाटुकार फरियादी को जाने नहीं देते थे। दरबार में बिना किसी भय के जाने का वातावरण नहीं बन पाता था, क्योंकि आमजन को राजसी परिपाटियों का अनुकरण करना पड़ता था। इसी दरबारी रंग–ढंग का अनावरण मीरा करती हैं कि उन्हें दरबारों के हेलियों–मेलियों से कोई तात्पर्य नहीं हैं, वे तो अपने प्रभु रूपी राजा से सीधे मिलती हैं :

"हेल्यां मेल्यां काम णा म्हारे, म्हा मिल्या सरदारां री
कामदाँरा सू काम णा म्हारे, जावा म्हा दरबारा री।" [6]

असल में जनता के कष्टों को देखकर मीरा यहाँ सामंती व्यवस्था पर करारा व्यंग्य करती हैं। आखिर ऐसी समाज व्यवस्था का क्या अर्थ जिसमें कोई दुखी व्यक्ति अपने लिए न्याय की उम्मीद भी ना कर सके। **माधव हाड़ा** लिखते हैं– "मीरा ने राजसत्ता और पितृसत्ता के विरुद्ध संघर्ष किए और इन संघर्षों के लिए ही वह भक्ति का एक खास ढंग गढ़ती है, यह तथ्य लगभग

भुला दिया गया। प्रेम, रोमांस, भक्ति, अध्यात्म और कविता आदि से मिला–जुला मीरा का इतिहास से कटा हुआ स्त्री रूप ही सब जगह लोकप्रिय हो गया। हिन्दी के अधिकांश साहित्यिक मीरा की इसी निर्मित छवि का विश्लेषण करते रहे। डॉ. हाड़ा इस आलेख में विस्तार से चर्चा करने के बाद मत देते है कि दरअसल भक्ति मीरा के यहां लैंगिक दमन और शोषण के विरुद्ध स्त्री के निरंतर संघर्ष की युक्ति मात्र है। मीरा की कविता में, संत–भक्तों से अलग, एक पीड़ित–वंचित स्त्री का दुःख और असंतोष इतना मुखर है कि यह उसकी निर्मित छवि को ध्वस्त करने के लिए पर्याप्त है।''[7] जब आम व्यक्ति के श्रम एवं पसीने से राजसी वैभव और सत्ता का सुख पलता है तो क्या राजा का यह कर्तव्य नहीं कि वह प्रजा या जन के साथ उचित एवं सम्मानपूर्वक व्यवहार करे। इसीलिए मीरा को ऐसे दरबार से कोई लेना–देना नहीं हैं। उन्हें तो अपने प्रभु कृष्ण के दरबार में जाना अच्छा लगता है, क्योंकि वहाँ किसी तरह की ऊँच–नीच नहीं हैं :

''राणोजी रूठ्यां बाँरो देश रखासी
हरि रूठयां कुंभलास्यां हो माई।'' [8]

मीरा के युग परिवर्तनकारी पदों को केवल धार्मिक एवं भक्ति के महत्व के साथ देखना तर्कसंगत नहीं है। मीरा कृष्ण भक्त कवयित्री हैं, तो इस अर्थ में कि उन्होंने कृष्ण को अपना आराध्य देव मानकर भक्ति मार्ग का अनुसरण किया है। वास्तविक रूप से मीरा का काव्य अपने समय के समाज और शासन व्यवस्था का चित्र भी प्रस्तुत करता है तथा उसका अपना ऐतिहासिक महत्व है। मीरा ने रचनाओं में स्त्री जीवन की कटुताओं के लिए धर्म और परंपराओं को जिम्मेदार माना है, क्योंकि धर्म की अनुचित व्याख्याओं ने स्त्री के जीवन को कारागर में बदल दिया है। मीरा स्त्री मुक्ति की पैरोकार हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में स्त्री जीवन की विडंबनाओं को उठाया है। वे अपने समय की विद्रोही चिंतक थीं, जिनसे समाज आज भी प्रेरणा ले सकता है। मीरा के पद समाज और व्यक्ति को न्याय और सत्य के मार्ग का अनुसरण करने की प्रेरणा देते हैं।

<u>संदर्भ</u> :

(1) sahityashilpi.com से उद्धृत।

(2) *चतुर्वेदी, परशुराम : मीरा पदावली, हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, पद 190.*

(3) *मनोहर, शंभुनाथ सिंह : मीरा पदावली, पद 19.*

(4) *sahityashilpi.com से उद्धृत।*

(5) *ब्रह्मचारी, प्रभुदत्त : मतवारी मीरा, अभिनव प्रकाशन, कानपुर, पृ. 65.*

(6) *चतुर्वेदी, परशुराम : मीरा पदावली, हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, पद 22.*

(7) *पल्लव (संपादक) : मीरा एक पुनर्मूल्यांकन, आधार प्रकाशन, पंचकूला से उद्धृत।*

(8) *चतुर्वेदी, परशुराम : मीरा पदावली, हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, पद 42.*

❁ ❁

Since March 2002
An International, Registered & Referred Monthly Journal : Hindi Literature
Research Link - 159, Vol - XVI (4), June - 2017, Page No. 54-55
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

मन्नू भंडारी के कथा-साहित्य में बाल मनोविज्ञान

प्रस्तुत शोधपत्र में हिन्दी की बहुचर्चित लेखिका मन्नू भंडारी के कथा-साहित्य में बाल मनोविज्ञान की पड़ताल की गई है। कोई भी साहित्यकार समाज से असंपृक्त रहकर रचनाधर्म में प्रवृत्त नहीं हो सकता है। जिस परिवेश में वह पलता है, कृतिकार के कृतित्व के पीछे उसका व्यक्तित्व होता है, जिसे उसके सर्जन का आंतरिक स्त्रोत कहा जा सकता है, सर्जन व्यक्तित्व की आंतरिक गहराइयों से उभरता है और रुप ग्रहण करता है। कथा लेखिका मन्नू भण्डारी का सर्जक व्यक्तित्व भी अपने परिवेश की टकराहट से बना हुआ है। बाल मनोविज्ञान के अंतर्गत 'आपका बंटी' मन्नू जी की सर्वश्रेष्ठ रचना कही जाए, तो अतिश्योक्ति नहीं होगी।

डॉ.(श्रीमती) अंजनी पाठक* एवं पूनम वर्मा**

मन्नू भंडारी ने कहानियाँ और उपन्यास दोनों लिखे हैं। एक प्लेट सैलाब (1962), मैं हार गई (1957), तीन निगाहों की एक तस्वीर, यही सच है (1966), त्रिशंकु और आँखों देखा, झूठ आदि उनके महत्वपूर्ण कहानी संग्रह हैं। विवाह विच्छेद के त्रासदी में पिस रहे एक बच्चे को केन्द्र में रखकर लिखा गया, उनका उपन्यास 'आपका बंटी' (1971) हिन्दी के सफलतम उपन्यासों में गिना जाता है। लेखक राजेन्द्र यादव के साथ लिखा गया उनका उपन्यास 'एक इंच मुस्कान' (1962) पढ़े–लिखे आधुनिक लोगों को एक दुखांत रचना है, जिसका एक अंक लेखकद्वय ने क्रमानुसार लिखा था। आपने बिना दीवारों का घर (1966) शीर्षक से एक नाटक भी लिखा था।

बात मनोविज्ञान प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने मनोवैज्ञानिक फ्रायड, एडलर, और युंग के सिद्धांतों का आश्रय लेकर बंटी के अर्न्तद्वंद और तज्जन्य कुठांओं का अत्यन्त सजीव और वैज्ञानिक आकलन प्रस्तुत किया है। बंटी की पारिवारिक परिस्थितियाँ सामान्य नहीं है, इसलिए उनको व्यवहार में अनेक असामान्यताएँ आ गई है। उसका ईगो अत्यन्त प्रबल है, इसलिए उसमें एकाधिकार की भावना सदैव विद्यमान है। उसके खिलौने हो या माता–पिता वह इन्हें किसी के साथ नही बांट सकता। मीरा और डॉक्टर जोशी के प्रति उसके मन में ईष्या के भाव हैं, क्योंकि वह इन्हें मम्मी और पापा के अलगाव का मूल कारण मानता है। सुखवाद (अपने ही सुख के बारे में सोचना) के कारण अपनी ही इच्छाओं की पूर्ति चाहता है, लेकिन विफलता के कारण विद्रोही बन जाता है।

बच्चे के व्यक्तित्व निर्माण में वंशगत विशेषताएँ और परिवेश का महत्वपूर्ण योगदान होता है। बंटी के व्यवहार में उसके पापा के स्वभाव और संस्कार देखकर शकुन सोचती है.... कैसे एक आदमी एक छोटे से अणु में अपना चेहरा, मोहरा, आदत, व्यवहार, संस्कार सबकुछ अपने बच्चे में सरका देता है। बंटी स्वभाव से जिज्ञासु है। कोई भी स्थिति हो, व्यक्ति अथवा वस्तु वह प्रत्येक रुप को तर्क की कसौटी पर परखना चाहता है। मम्मी का कॉलेज जाने के लिए तैयार होना, उसे सदैव कौतुहल में डालता है, क्योंकि ड्रेसिंग टेबल पर रखी रंग–बिरंगी गोगियों में कोई जादू है, तभी तो मम्मी इन सबको लगाने के बाद एकदम बदल जाती है।

एटलर के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में थोड़ी–बहुत हीन–भावना रहती है, जो उसे क्षतिपूर्ति के लिए सदैव प्रेरित करती रहती है। राई के साथ नोंक–झोंक और उसकी माँ के ताने सुनकर वह स्वयं को उपेक्षित समझने लगता है, जिसकी पूर्ति वह माँ और पापा के प्रति एकाधिकार में पाना चाहता है, लेकिन असफल होकर विरोधी और आक्रमक बन जाता है। पापा के पास जाकर भी उसे कहीं अपनापन नहीं दिखाई देता और उसके मन में सदैव गुंजता रहता है, बेफालतू बच्चा, तीसरा बच्चा।

इस रुप में बंटी की जीवन गाथा मनोवैज्ञानिक तथ्यों और प्रमाणिकता के अनुसार आधार पर प्रस्तुत हुई है। वह एक असाधारण पात्र है, जो व्यक्तिवादी मान्यताओं का प्रतिनिधि है। 'आपका बंटी' सोलह भागों में विभक्त एक लघु उपन्यास है, जिसमें पारिवारिक विसंगति के शिकार पति–पत्नी के एकमात्र पुत्र बंटी को केन्द्र में रखकर उसके मानस का मनोवैज्ञानिक और यथार्थवादी चित्रण किया गया है। कॉलेज की प्रिंसपिल शकुन पति के अभाव की पीड़ा को पुत्र के प्रति प्रेम व्यक्त करके सहज होने का प्रयास करती है। उसके मन में कहीं दबी–ढकी आशा है कि शायद बंटी के कारण अजय उसके जीवन में फिर से आने को विवश हो जाएगा, तब एक अजीब सी भावना उसके मन में आई कि बंटी उसका बेटा ही नहीं, वह एक हथियार भी है, जिससे वह अजय को बेघर भी कर सकती है।

**विभागाध्यक्ष (हिन्दी विभाग), डॉ.सी.वी.रामन् विश्वविद्यालय, कोटा-बिलासपुर (छत्तीसगढ़)*
***एम.फिल्. शोधार्थी, (हिन्दी विभाग), डॉ.सी.वी.रामन् विश्वविद्यालय, कोटा-बिलासपुर (छत्तीसगढ़)*

उपन्यास का प्रारंभ शकुन और बंटी के भावनात्मक वर्णन से होता है। बंटी का माँ की मानसिकता को समझने का प्रयास, बंटी को माध्यम बनाकर शकुन की अजय को पाने की आशा वकील चाचा से अजय के मीरा के साथ संबंध को जानकर शकुन की छटपटाहट, प्रतिक्रिया स्वरुप उसका डॉ. जोशी की ओर आकृष्ट होना उपन्यास में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न करती है। शकुन का तलाक के कागजों पर हस्ताक्षर करने के बाद विवाह संघर्ष को धरमसीमा तक पहुँचा देता है। परिस्थिति से समझौता न कर पाने के कारण बंटी और शकुन को अलगाव की यातना भोगनी पड़ती है। पापा के पास जाकर भी वह नई माँ को 'आंटी' या 'वे' तक ही अपना पाता है, पर उसके साथ उसके पापा भी उसके नहीं रह पाते हैं। असामान्य बंटी के लिए हॉस्टल ही एकमात्र रास्ता रह जाता है। अब वह मम्मी और पापा दोनों से कट चुका होता है। सारी दुनिया उसे बेगानी लगती है। अब उसे न केवल अपनी भीतरी संवेदनाओं का अकेले रहकर सामना करना पड़ेगा, वरन् बाहरी समाज में भी अकेले अपने–आप को स्थापित करने का प्रयास करना होगा।

'आपका बंटी', सामाजिक समस्या पर आधारित होते हुए भी मनोविश्लेषणवादी उपन्यास है। यहाँ शकुन और अजय अपनी उन्मुक्त मानसिकता और साथ ही अनुभव हीनता के शिकार हैं। वास्तव में आज नारी स्वातंत्रय के इतने शोर के बाद भी आज की नारी अपने परम्परागत संस्कारों के साथ बंधी हुई, अब भी वहीं खड़ी है। उसे पत्नी कामकाजी महिला और माँ की तिहरी भूमिका निभानी पड़ती है, जिसके कारण उसके व्यवहार में जटिलता आ जाना कोई बड़ी बात नही है। ऐसे में पति का उसकी स्थिति को समझने के बजाय अपनी रुचि उस पर सौंपना निश्चिय ही संघर्ष को जन्म देता है। यह तब और भी विकट हो जाती है, जब पति–पत्नी में पारस्परिक सामंजस्य का अभाव होता है।

'आपका बंटी' में एक ऐसे बालक की हृदयस्पर्शी संवेदनशील कथा है, जो शिक्षित और स्वतंत्र जीवों माँ–बाप की सन्तान है। वस्तुतः उपन्यास का यह बीज बिन्दु आसपास जिये जा रहे हैं। कुछ जीवन चरित्रों से प्रेरित है। उपन्यास पूर्व ''जन्म पत्री'' बंटी की लेखिका ने यह स्पष्ट किया है। उन्होंने बंटी को ही केन्द्र में रखकर इस उपन्यास की रचना की है। अपने मित्रों से बंटी के बारे में सुनकर लेखिका उससे बारे में अनेक कल्पनाचित्र उनके मन में बनते–बिगड़ते रहे, उन्हें अनुभव होता है कि बंटी किन्ही एक–दो घर में नहीं, आज के अनेक परिवाराके में सांस ले रहा है। अलग–अलग संदर्भों में, अलग–अलग स्थितियों में..... लेकिन जब सब मिलाकर बंटी मेरे सामने खड़ा हुआ, तो मैंने अपने आपको आतंकित ही अधिक पाया। समाज की दिनों–दिन बढ़ती हुई एक ऐसी समस्या के रुप में जिसका कहीं कोई हल नहीं दिखाई देता है। यही कारण है कि बंटी मुझे तुफानी समुद्र यात्रा में किसी डीप पर छूटे हुए अकेले और असहाय बच्चे की तरह नहीं, वरन् अपनी यात्रा के कारणों के साथ और सामान्तर जीते हुए दिखाई दिया। बंटी यहाँ पारिवारिक विसंगतियों के बीच संवेदनहीन परिवेश का प्रतीक है।

बंटी समूचे उपन्यास का केन्द्र बिन्दु है। शकुन और बंटी दोनों के चरित्रों की वास्तविकता अंतर्विरोधों में जीने की वास्तविकता है और परोक्ष रुप में अजय के जीवन की वास्तविकता भी यही है। यहाँ बंटी उपन्यास का पात्र मात्र पात्र न होकर मध्यमवर्गीय समाज में बंटी जैसे बालकों का प्रतिनिधी है, बिखरते परिवारों के मध्य पनपती संवेदनहीनता इन बच्चों को जैसे निगलती जा रही है। लेखिका इस रुप में पाठकों को सामाजिक प्रश्नानुकुलता के बारे में सोचने के लिए प्रेरित करना चाहती है, जीते–जागते बंटी तिल–तिल करके समाज की एक बेनाम इकाई भर बनते चले जाना यदि पाठक को अश्रु विरगित ही करता है, तो यह पात्र सही पते पर नहीं पहुँचा है। यहाँ तलाश है, उस भाव की जो आपके बंटी को जीवन के उस मोड़ पर पहुँचाए, जहाँ सभी सुखी प्रसन्न और संतुष्ट हैं।

संदर्भ :

(1) आपका बंटी (1989) : राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

(2) *श्रेष्ठ कहानियाँ (1969) : अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली।*

(3) *शुक्ला, डॉ.ममता (1989) : मन्नू भण्डारी के कथा साहित्य का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा।*

(4) *हाड़े, गुलाब राव (1987) : मन्नू भण्डारी का कथा साहित्य।*

(5) *भटनागर, डॉ.महेन्द्र (1988) : हिन्दी कथा–साहित्य विविध आयाम, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली।*

(6) *गुप्ता, डॉ.मंजुला (1986) : हिन्दी उपन्यास, समाज और व्यक्ति, सूर्य प्रकाशन, दिल्ली।*

(7) *सिंह, राम विनोद : हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास में नारी चित्रण।*

(8) *राजुरकर, अनीता (1987) : कथाकार मन्नू भण्डारी, नेशनल पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली।*

(9) *शर्मा, डॉ.बृजमोहन (1991) : कथा लेखिका मन्नू भण्डारी, कादम्बरी प्रकाशन, दिल्ली।*

(10) *राजकुमार, डॉ.नीरजा (1988) : जैनेन्द्र का कथा साहित्य, सूर्य प्रकाशन, दिल्ली।*

पत्रिकाएँ :

(1) आजकल, जनवरी 1980.

(2) *आलोचना, जून 1965.*

(3) *समीक्षा, अक्टूबर 1973, जनवरी 1990.*

(4) *इंडियन लिटरेचर, सितम्बर–अक्टूबर 1993.*

❁ ❁

Since March 2002
An International, Registered & Referred Monthly Journal : Hindi Literature
Research Link - 159, Vol - XVI (4), June - 2017, Page No. 56-58
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में जाति व्यवस्था और दलित

प्रस्तुत शोधपत्र में श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में जाति व्यवस्था और दलितों के चित्रण का अध्ययन किया गया है। श्रीलाल शुक्लजी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से भारतीय समाज में व्याप्त जाति, वर्ण-व्यवस्था का गहन और सूक्ष्मता के साथ चित्रण किया है। शुक्लजी ने समाज में व्याप्त जातीय संघर्ष, वर्ग विभेद और आजादी के बाद भी दलितों के साथ जातिगत शोषण-उत्पीड़न तथा उनकी अस्मिता के साथ खिलवाड़ का सजीव चित्रण अपने उपन्यासों में किया है, जो तत्कालीन भारतीय समाज तथा सामाजिकाबंधों को समझने में सहायक सिद्ध होता है।

पूजा भट्ट

श्रीलाल शुक्ल ने अपने उपन्यासों में तत्कालीन समाज का समग्र यथार्थ प्रस्तुत किया है। यह यथार्थ जहाँ एक ओर व्यवस्था के सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक स्तरों पर भ्रष्टाचार, अवसरवाद, शोषण–उत्पीड़न, अव्यवस्था आदि को उजागर करता है, तो वहीं दूसरी ओर समाज के आधारभूत ढ़ाँचे में स्थापित जाति व वर्गीय व्यवस्था की भी कलाई खोलता है। अपने समय के समाज, उसकी धारणाओं, मान्यताओं, पूर्वाग्रहों तथा आडम्बरों को स्पष्ट करने के लिए शुक्ल जी अपने उपन्यासों के पात्रों का सहारा लेते हैं।

वर्ण व्यवस्था का आधार रंग, चयन तथा गुण माने जाते हैं, परन्तु यथार्थ में यह पूरी व्यवस्था जन्म पर आधारित है। ''जन्म से ही ब्राह्मण, भले ही वह मूर्ख हो, जन्म से ही क्षत्रिय, भले ही वह डरपोक हो, जन्म से ही वैश्य, भले ही भीख मांगता हो और जन्म से ही शूद्र, भले ही वह निपुण, सबल पुत्र ही क्यों न हो।''(1) इन चारों वर्णों में शूद्र को छोड़कर अन्य तीनों वर्गों को शिक्षा, सम्पत्ति, सत्ता सहित सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक आदि सभी अधिकार प्राप्त हैं, जबकि शूद्र इन सभी अधिकारों से विहीन हो मात्र सेवा के कर्तव्य का निर्वहनकर्ता है।

प्राचीन काल में निर्धारित किए गए इस वर्ण आधारित स्तरीकरण ने समाज में एक ऐसी धारणा को विकसित किया जो लम्बे दौर के बाद आज भी अपना प्रभाव अंकित करती है। समय के साथ समाज और सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन तो हुआ, परन्तु वर्ण आधारित व्यवस्था अपने लाभों के चलते उच्च वर्णों द्वारा पोषित की जाती रही। परिणामस्वरूप आज भी सामाजिक सम्बंधों में पुरातन वर्णों की छाप दिखाई देती है। यह वर्ण व्यवस्था का ही परिणाम है कि आज के गाँवों में भी दलितों या कथित अछूतों के घर गाँव के अन्दर न होकर गाँव से बाहर एक निश्चित स्थान पर होते हैं। श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास 'रागदरबारी' के शिवपालगंज में भी दलितों के साथ छुआछूत का व्यवहार किया जाता है। उनका मुहल्ला 'चमरही' गाँव के बाहर है। शुक्ल जी लिखते हैं, ''चमरही, गाँव के मुहल्ले का नाम था, जिसमें चमार रहते थे। चमार एक जाति का नाम है, जिसे अछूत माना जाता है। अछूत एक प्रकार के दुपाये का नाम है, जिसे लोग संविधान लागू होने से पहले छूते नहीं थे। संविधान एक कविता का नाम है, जिसके अनुच्छेद 17 में छुआछूत खत्म कर दी गयी है। क्योंकि इस देश में लोग कविता के सहारे नहीं, बल्कि धर्म के सहारे रहते हैं और क्योंकि छुआछूत इस देश का एक धर्म है, इसलिए शिवपालगंज में भी दूसरे गाँवों की तरह अछूतों के अलग–अलग मुहल्ले थे और उनमें सबसे ज्यादा प्रमुख मुहल्ला 'चमरही' था। जिसे जमींदारों ने किसी जमाने में बड़ी ललक से बसाया था और उस ललक का कारण जमींदारों के मन में चर्म–उद्योग का विकास करना नहीं था, बल्कि यह था कि वहाँ बसने के लिए आने वाले चमार लाठी अच्छी चलाते थे।''(2)

संविधान में अस्पृश्यता को एक अपराध घोषित कर दिए जाने के बावजूद व्यावहारिक जीवन में दलितों के प्रति छुआछूत का व्यवहार किया जाता है। उपन्यास के एक पात्र प्रिंसिपल साहब के बारे में शुक्ल जी लिखते हैं, ''उनके पिता जो एक ऑनरेरी मजिस्ट्रेट के पेशकार थे और इसके बावजूद ईमानदार थे.....उनके जीवन के कुछ सिद्धान्त थे..... रेलगाड़ी पर यात्रा करते समय कुछ नहीं खाना, क्योंकि वहाँ शूद्रों का स्पर्श होता है।''(3)

शुक्ल जी ने अपने अधिकांश उपन्यासों में पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार आदि उन हिन्दी भाषी क्षेत्रों के समाज का निरूपण किया है, जहाँ वर्ण व्यवस्था का भयावह रूप आज भी ग्रामीण जीवन का आधार राग है। ''एक जमाना था कि किसी भी बाँभन–ठाकुर के निकलने पर वहाँ के लोग अपने दरवाजों पर उठकर खड़े हो जाते थे, हुक्कों को जल्दी से जमीन पर रख दिया जाता था, चिलमें फेंक

शोधछात्रा, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामनगर, सम्बद्ध - कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

दी जाती थीं, मर्द हाथ जोड़कर 'पाँय लागी महराज' का नारा लगाते थे, औरतें, बच्चों को गली से हाथ पकड़कर खींच लेती थीं।''(4)

आज जहाँ एक ओर दुनिया विश्व बाजार की ओर बढ़ रही है, वहीं देश में ऐसे कई गाँव जिन्दा हैं, जहाँ शिक्षा के अभाव और वर्ण व्यवस्था के प्रभाव के चलते दलित बुजुर्गों की भी सामाजिक हैसियत सवर्ण युवकों के सामने गुलामों जैसी ही है। रागदरबारी उपन्यास में का पात्र लंगड़ दलित है। उसकी स्थिति को उपन्यासकार ने इस तरह प्रस्तुत किया है, ''शास्त्रों में शुद्रों के लिए जिस आचरण का विधान है, उसके अनुसार चौखट पर मुर्गी बनकर उसने वैद्यजी को प्रणाम किया। इससे प्रकट हुआ कि हमारे यहाँ आज भी शास्त्र सर्वोपरि हैं और जाति प्रथा मिटाने की सारी कोशिशें अगर फरेब नहीं हैं, तो रोमांटिक कार्रवाइयाँ हैं।''(5)

वर्तमान विकसित समाज में भी विशेष तौर पर ग्रामीण समाज में वर्ण व्यवस्था का असर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। यह बात बड़ी उम्र वाले व्यक्तियों पर ही लागू नहीं होती, वरन इस व्यवस्था में पल–बढ़ रहे तथा इससे शिक्षा प्राप्त कर रहे बच्चों पर भी लागू होती है। 'सूनी घाटी का सूरज' उपन्यास में स्कूल के एक दृश्य में वर्ण व्यवस्था को देखा जा सकता है। ''एक कहता –'अरे चमरवा ने मेरे ऊपर गुठली थूक दी। इसके दाँत तोड़ दुँगा।' दूसरा कहता 'यह हमेशा हम पर थूकता है। इसका पहाड़ा पढ़ा जाए।' तब कुछ बाँभन और ठाकुरों के लड़के हरीराम को पकड़ लेते। वह चमार का लड़का था। एक बंदर के बच्चे की भाँति वह चिचियाने लगता। उसकी आँखें हाथों से बंद करके दूसरे लड़के उसके सिर पर चपतें मारते और हर चपत पर कहते–

'दो के दो'
'दो दुने चार'
'दो तियाँ छह।'' (6)

इधर 'रागदरबारी' के 'वैद्यजी' की ही तरह 'सूनी घाटी का सूरज' उपन्यास में भी वैद्य 'धारणीधार' सवर्ण मानसिकता के प्रतीक हैं। ''मिट्टी और पानी से अपने हाथों को शोधित करके वैद्य जी चलते बने, तभी एक मजदूरनी आकर उनके पैरों पर पड़ गई। वैद्य जी चौंककर पीछे हट गए, बोले, ''शिव, शिव, शिव, न जाने कौन जाति है? अपना रोग तो बताओ ?''(7)

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् सामंतवाद और जमींदारी प्रथा के उन्मूलन को लेकर कई प्रयास किए गए। परन्तु ''जमींदारी टूटने का यह नतीजा तो नहीं निकला कि चमरही गाँव के भीतर समा जाती या वहाँ ढंग के दो–चार कुएं और मकान बन जाते, पर इतना तो हो गया कि किसी बाँभन के निकलने पर पहले जैसा 'गार्ड ऑफ ऑनर' न दिया जाए। इसलिए 'हाय! कहाँ वे दिन! और कहाँ आज के दिन!' की दीनता के भाव से बचने के लिए बाँभनों ने–और खासतौर से वैद्यजी ने–यथासम्भव उधर से निकलना बंद कर दिया था।''(8)

वर्ण व्यवस्था के प्रभाव के चलते सरकारी मशीनरी में किस प्रकार दलितों के विरूद्ध कार्य किये जाते हैं, शुक्ल जी के उपन्यास 'मकान' में इसका विवरण मिलता है। ''रह गये भंगी–चमार, उनके लिए एक–एक कमरे वाली बैरकें बनवा दो, चाहे उनके घर में एक आदमी हो या ग्यारह! बस, इतने से आर0के0 पुरम् और टी0टी0 नगर का कलंक धुल जाएगा।''(9)

दलितों के प्रति यह द्वेष भावना उच्चवर्गीय व्यक्तियों में भी सामान्य बात है, भले ही वह उच्च शिक्षित ही क्यों न हों। वह खुले रूप में भले ही यह प्रदर्शित न करें, परन्तु भीतर ही भीतर दलितों की तरक्की उन्हें हजम नहीं होती है। दलितों द्वारा शिक्षा प्राप्त करने पर डिप्टी डायरेक्टर ऑफ एजूकेशन अपनी भावनाओं को व्यक्त करता है, ''हमारे जमाने में अच्छे खानदान के लड़के पढ़ने आते थे, ध्यानपूर्वक पढ़ते थे, अब भंगी–चमारों के लड़के पढ़ने आते हैं, तो पढ़ाई कहाँ से होगी? तुम खुद बताओ न भइयाजी!''(10)

'राग विराग' उपन्यास में उच्च वर्गीय पढ़े–लिखे कर्नल भारद्वाज भले ही जाति प्रथा को लेकर अधिक सख्त नहीं हैं, परन्तु सदियों से भीतर तक जड़ जमा चुकी मानसिकता के विरूद्ध संघर्ष संचालित कर उसे तोड़ पाने में असमर्थ दिखायी देते हैं। ''निजी तौर पर मेरे लिए भी जाति की कोई अहमियत नहीं। फिर भी लोगों के लिए रोजमर्रा की जिन्दगी में उसकी अहमियत है। मान लो, तुम एक चिड़िया पालने जा रही हो, तो यह तो पता होना चाहिए कि वह बुलबुल है या गौरैया, चमगादड़ है या उल्लू। पता होना चाहिए न?''(11)

स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था की जड़ कमजोर होने के बजाय जातिगत इकाइयों में और अधिक मजबूत हुई है। आज भी जाति से ही यह निर्धारण किया जाता है कि उक्त व्यक्ति के साथ किस प्रकार का व्यवहार किया जाना चाहिए। 'रागदरबारी' उपन्यास में गयादीन नसबन्दी अधिकारी से पूछता है कि तुम कौन हो? तो वह सामान्य भारतीय की तरह अपनी जाति का नाम बताते हुए कहता है कि ''मैं अगरवाल हूँ।'' किन्तु गयादीन को केवल 'अगरवाल' कहने भर से स्पष्ट नहीं होता कि वह कौन सा अगरवाल है, तो वह स्पष्ट रूप से पूछता है – ''तुम वैश्य अगरवाल हो? उसने सिर हिलाकर इस सम्मानसूचक विचार की पुष्टि की।''(12)

'रागदरबारी' उपन्यास में बद्री पहलवान रिक्शेवाले के द्वारा उसे 'ठाकुर साहब' कहे जाने पर अपमान का अनुभव करता है। ''इतनी देर बाद बद्री पहलवान को अचानक अपमान की अनुभूति हुई। हाथ बढ़ाकर उन्होंने रिक्शेवाले की बनियान चुटकी से पकड़कर खींची और कहा – अबे, घण्टे भर से यह 'ठाकुर साहब'–'ठाकुर साहब' क्या लगा रखा है! जानता नहीं, मैं बाँभन हूँ।''(13)

जाति व्यवस्था की इस मजबूती में अन्तर्जातीय विवाह एक बड़ी चुनौती से कम नहीं है। गयादीन की बेटी के साथ अपने बेटे बद्री द्वारा विवाह करने की बात सुनकर सार्वजनिक रूप से वैद्यजी भले ही इसके समर्थन का ढोंग करते हैं, लेकिन वह इसके लिए तैयार नहीं थे। वह बद्री से कहते हैं – ''हम ब्राह्मण हैं, वह वैश्य है। पर यह केवल जाति की बात नहीं है, सिद्धान्त की बात है!''(14) वहीं 'रागविराग' उपन्यास में कर्नल भारद्वाज अपनी लड़की के साथ पढ़ने वाले लड़के के बारे में पूछते हैं – ''उसकी जाति क्या है? शेड्यूल्ड कास्ट तो नहीं? ज्यादातर इन्हीं जातियों के लड़के बूढ़े होकर एम0बी0बी0एस0 में दाखिल होते है।''(15)

'रागदरबारी' उपन्यास में 'सनीचर' और 'लंगड़', 'सूनी घाटी का सूरज' में 'रामदास' तथा 'रागविराग' में 'शंकरलाल' आदि

महत्वपूर्ण पात्रों के माध्यम से उन्होंने यह व्यक्त करने का प्रयास किया है कि समाज में दलित मूलभूत सुविधाओं से वंचित होकर दयनीय जीवन जीने को मजबूर हैं। 'रागदरबारी' में सनीचर के बारे में वह लिखते हैं कि वह वैद्यजी के प्रति इतना वफादार था कि ''वह किसी भी राह चलते आदमी पर कुत्ते की तरह भौंक सकता था, पर वैद्यजी के घर का कोई कुत्ता भी हो, तो उसके सामने वह अपनी दुम हिलाने लगता था।''(16)

शुक्ल जी के उपन्यासों के उच्च पदस्त पात्र भी सवर्ण मानसिकता का प्रमाण देते हुए समाज की वास्तविकता से पर्दा उठाते हैं। 'विस्रामपुर का संत' उपन्यास में राज्यपाल 'महामहिम कुँवर जयंती प्रसाद सिंह' पिछले दलित राज्यपाल के जाने के बाद राजभवन को गंगाजल से शुद्ध और पवित्र कर प्रवेश करते हैं।

समय के बदलने के साथ–साथ वर्ण आधारित सामाजिक सम्बन्धों में भी परिवर्तन आ रहा है। आज पाँच–छः दशक पहले की तरह बाँभनों–ठाकुरों की दबंगई न रह गयी हो, परन्तु यह सोच आज भी दिमागों में जड़ जमाये हुए है। 'अज्ञातवास' उपन्यास का ओवरसियर इस विषय में कहता है – ''क्या बतावैं मेम साहब, बात यह है कि वह अब चमार नहीं रहा। उसका लड़का कुछ पढ़–लिख गया है न, इसलिए वह चमार नहीं, अपने को लम्बरदार समझने लगा है।''(17)

शुक्ल जी नये समाज में शिक्षित युवाओं में जाति प्रथा के विरूद्ध विकसित हो रही चेतना का भी वर्णन करते हैं। 'राग विराग' उपन्यास में कर्नल भारद्वाज और पुत्री सुकन्या के बीच का वार्तालाप इस बात को स्पष्ट करता है।

''सुकन्या– जाति? आप जात–पाँत को मानते हैं?

पापा– मेरे न मानने से क्या जाति–प्रथा खत्म हो जाएगी?

सुकन्या– आप न मानें और आपके साथ और सारे लोग न मानें तो जरूर हो जाएगी।

पापा– फिर भी, शंकरलाल की जाति क्या रही?

सुकन्या– पापा, सच तो यह है कि मुझे पता नहीं, और मुझे पता चलेगा भी नहीं, क्योंकि उससे या किसी से भी मैं इसके बारे में पूछ नहीं पाऊँगी। मैं जानना भी नहीं चाहती, मेरे लिए जाति का सवाल निरर्थक है और ऐसा सवाल उठाना, माफी चाहती हूँ पापा, असभ्यता है।''(18)

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि श्रीलाल शुक्ल जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से भारतीय समाज में व्याप्त जाति–वर्ण व्यवस्था का गहन और सूक्ष्मता के साथ चित्रण किया है। शुक्ल जी ने समाज में व्याप्त जातीय संघर्ष, वर्ग विभेद और आजादी के बाद भी दलितों के साथ जातिगत भोषण–उत्पीड़न तथा उनकी अस्मिता के साथ खिलवाड़ का सजीव चित्रण अपने उपन्यासों में किया है, जो तत्कालीन भारतीय समाज तथा सामाजिक सम्बंधों को समझने में सहायक सिद्ध होता है।

संदर्भ :

(1) जाटव, डॉ.डी.आर. : डॉ0 अम्बेडकर के समाजशास्त्रीय विचार, पृ0 22.

(2) शुक्ल, श्रीलाल : रागदरबारी, पृष्ठ संख्या 102.

(3) शुक्ल, श्रीलाल : रागदरबारी, पृष्ठ संख्या 227.

(4) शुक्ल, श्रीलाल : रागदरबारी, पृष्ठ संख्या 263.

(5) शुक्ल, श्रीलाल : रागदरबारी, पृष्ठ संख्या 35.

(6) शुक्ल, श्रीलाल : सूनी घाटी का सूरज, पृष्ठ संख्या 21.

(7) शुक्ल, श्रीलाल : सूनी घाटी का सूरज, पृष्ठ संख्या 55.

(8) शुक्ल, श्रीलाल : रागदरबारी, पृष्ठ संख्या 264.

(9) शुक्ल, श्रीलाल : मकान, पृष्ठ संख्या 112.

(10) शुक्ल, श्रीलाल : रागदरबारी, पृष्ठ संख्या 316.

(11) शुक्ल, श्रीलाल : राग विराग, पृष्ठ संख्या 08.

(12) शुक्ल, श्रीलाल : रागदरबारी, पृष्ठ संख्या 273.

(13) शुक्ल, श्रीलाल : रागदरबारी, पृष्ठ संख्या 43.

(14) शुक्ल, श्रीलाल : रागदरबारी, पृष्ठ संख्या 258.

(15) शुक्ल, श्रीलाल : राग विराग, पृष्ठ संख्या 07.

(16) शुक्ल, श्रीलाल : रागदरबारी, पृष्ठ संख्या 68.

(17) शुक्ल, श्रीलाल : अज्ञातवास, पृष्ठ संख्या 45.

(18) शुक्ल, श्रीलाल : राग विराग, पृष्ठ संख्या 07.

❄ ❄

Since March 2002
An International, Registered & Referred Monthly Journal : Hindi Literature
Research Link - 159, Vol - XVI (4), June - 2017, Page No. 59-60
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

आंचलिक उपन्यासकार फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों में सामाजिक चेतना

प्रस्तुत शोधपत्र, प्रसिद्ध आंचलिक उपन्यासकार फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों में सामाजिक चेतना पर आधारित है। फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों में सामाजिक चेतना का उद्देश्य नगरीय सभ्यता और जागृति से दूर ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त सामाजिक समस्याओं की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ठ करना है। अंचल विशेष के लोक जीवन और लोक संस्कृति को आधार बनाकर समाज में नयी चेतना भरने के लिए रेणु के नाम का उल्लेख होता है। अपने उपन्यासों के माध्यम से उन्होंने समाज में व्याप्त अंधविश्वास, अशिक्षा, जादू-टोना, भूत-प्रेत आदि की समस्याओं पर स्वाभाविकता से प्रकाश डाला है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व समाज में व्याप्त अव्यवस्थाओं के बीच जीवन जीने को अभिशप्त मानव समाज में कितनी जागृति आई है, इसी का आकलन शोधपत्र में किया गया है।

अनुराधा श्रीवास्तव* एवं डॉ.उमाकान्त मिश्र**

आधुनिक कथा साहित्य में बहुचर्चित प्रवृत्ति के रूप में आंचलिकता की बात कही जा सकती है, परंतु हिन्दी कथा साहित्य में इस प्रवृत्ति को स्थापित करने का श्रेय फणीश्वर नाथ रेणु और उनके उपन्यास 'मैला आंचल' को दिया जाता है। आंचलिक रचनाओं में मानवीय परिवेश की समग्रता में धरती का प्रतिनिधित्व करते हुए अंचल क्षेत्रीय संस्कृति के जीवन सत्यों को उजागर करता है। भौगोलिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विशिष्टताओं तथा ऐतिहासिक परम्पराएँ और परिवेश आदि के उज्ज्वल और श्यामल रूप के सम्मेलन से अंचल का संवेदनशील व्यक्तित्व निर्मित होता है। डॉ. दुबे लिखते हैं कि, ''अंचल का अपना विशिष्ट भूगोल, संस्कृति, भाषा और स्थानीय समस्याओं से निर्मित अपना पृथक व्यक्तित्व होता है। यही व्यक्तित्व आंचलिक कृत्यों में अपनी समग्रता के साथ उभर कर विस्तार पाता है। अतः आंचलिकता को एक जीवंत मौलिक विचारणा कहना अनुपयुक्त न होगा।''(1)

फणीश्वर नाथ रेणु पर केन्द्रित समीक्षात्मक ग्रंथों के साथ–साथ उनकी कालजयी रचनाओं के अवलोकन के उपरांत मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि वास्तव में रेणु के उपन्यासों में लोकतात्विक चेतना समग्रता में भरी है। बिहार के सर्वथा पिछड़ा जिला पूर्णिया के ग्राम औराही हिंगना में 4 मार्च 1921 को मध्यमवर्गीय किसान परिवार में जन्म ग्रहण करने वाले रेणु ने आंचलिक जीवन को अपनी ऑखों से पुनः–पुनः अवलोकन किया। पूर्णिया अंचल उपेक्षित जनपद के रूप में नेपाल, पाकिस्तान और पश्चिम बंगाल से जुड़ा है। रेणु जी ने 'मैला ऑचल', 'परतीपरिकथा', 'दीर्घतपा', 'जुलूस', 'कितने चौराहे', 'पल्टूबाबू रोड' आदि के रूप में अनेक बहुमूल्य साहित्य रत्न प्रदानकर हिन्दी साहित्य को समृध्द किया। रेणु के उपन्यासों में सामाजिक जीवन को प्रस्तुत करने हेतु विभिन्न वर्गों का चित्रण हुआ है। नारी और पुरूश मिलकर सामाजिक जीवन की प्रस्तुति करते हैं। उपन्यासों में वर्णित पारिवारिक जीवन का चित्रण करते समय रेणु नारी के पारिवारिक जीवन में केन्द्रीत नहीं हुए हैं, परंतु नारी के अन्य विविध रूपों का चित्रण तथा उनकी शिक्षा, दीक्षा, परम्परागत संस्कार आदि की ओर इनकी लेखनी गतिमान हुई है।

रेणु जी की रचनाओं में सामाजिक चेतना के रूप में आंचलिक जीवन के दुख–दर्द, सुख–आनंद, संगति–विसंगति, गुण–अवगुण सब कुछ तटस्थ भाव से समग्रता के साथ अभिव्यक्त हुआ है। 'मैला आँचल' उपन्यास में डॉ. प्रशांत मेरीगंज में पहुँचता है, वह लोक जीवन का चित्रण करते हुए लिखता है, ''गाँव के लोग बड़े सीधे दिखते हैं, सीधे का अर्थ अपढ़, अज्ञानी और अंधविश्वासी हो तो वास्तव में सीधे हैं। जहाँ पर सांसारिक बुद्धि का सवाल है, ये हमारे और तुम्हारे जैसे लोगों को पाँच बार ठग लेंगे और तारीफ यह है कि तुम ठगे जाकर भी उनकी सरसता पर मुग्ध होने के लिए मजबूर हो जाओगे। यह मेरा सिर्फ सात दिनों का अनुभव है संभव है पीछे चलकर मेरी धारणा गलत साबित हो।'' मिथला और बंगाल के बीच का यह हिस्सा वास्तव में मनोहर है औरतें साधारण सुंदर होती है, उनके स्वास्थ्य भी बुरे नहीं है।'(2)

'मैला आंचल' में ग्रामीण पृष्ठभूमि बार–बार व्याख्यायित हुई है। इनके उपन्यासों में सामाजिक संघर्षधर्मी चेतना विधमान है। किसान, मजदूर, नारी अनेक शोषित लोगों का वर्ग है, जो गंवई जीवन जी कर भी सामंती मूल्यों और अभिजात्य वर्ग से संघर्ष करते हैं। आंचलिक क्षेत्र के लोग अत्यंत अंधविश्वासी हैं, जो छींकने, टोकने, बिल्ली के द्वारा काट देने पर आधारित अनेक मान्यताएँ हृदय में पाल रखे हैं। रेणु जी ने इन अंधविश्वासों का संगत चित्रण अपने उपन्यासों में किया है। उदाहरण द्रष्टव्य है –

बूढ़े ज्योतिषीजी धार्मिक अंधविश्वास के प्रतीक है, से भविष्यवाणी करते हैं, ''कोई माने या नहीं माने हम कहते हैं कि एक दिन इस गाँव में गिद्ध– कौआ उड़ेगा लक्षण अच्छे नहीं है, गाँव का ग्रह बिगड़ा हुआ है। किसी दिन इस गाँव में खून होगा, खून। पुलिस दरोगा गाँव की गली–गली में घूमेगा और यह इस्पिताल? अभी तो नहीं मालूम होगा जब कुएँ में दवा डालकर गाँव में हैजा फैलायेगा

**शोधछात्रा, शासकीय दा.क.स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बलौदाबाजार (छत्तीसगढ़)*
***शोध निर्देशक, शासकीय के.एम.कॉलेज, डौंडी, जिला-बालोद (छत्तीसगढ़)*

तो समझना। शिव हो।''[3]

फणीश्वर नाथ रेणु एक ऐसे समर्थ एवं समृद्ध आंचलिक कथाकार हैं, जिनके 'परती परिकथा' में मकबूल की भाभी बच्चा लेने के लिए परमादेव के पास जाती है। परमा देव को प्रसन्न करने के लिए 6 कबूतरों की बलि दी गई। परानपुर में अंधविश्वास है कि डेढ़ एकड़ की पाँच परिधियधें में ब्रम्ह पिशाच का राज्य है, वहाँ के लोक जीवन में यह विश्वास व्याप्त है कि –

''आँचल में अक्षत गिरे तो समझो कपाल खराब है और फूल गिरे तो समझो मनोकामना पूर्ण हो गयी।''[4]

रेणु के उपन्यास कलंक मुक्ति में बूढ़ी औरतें अज्ञानता और अशिक्षावश परिवार नियोजन संस्था को अपशकुन मानती है। 'जुलूस' उपन्यास के तालेवर गोढ़ी तंत्र साधना करते हैं, उसमें डायनों का गुण है। कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत है, ''वह मशान की हड्डी जिसके घर में गाड़ दे उसके घर में ऐसा बनरभुत्ता लग जाए कि एक ही साल में सब स्वाहा।''

डॉ. प्रशांत से भी सबसे पहले नाम के बाद जाति पूछी जाती है।

ब्राम्हण टोली के लोग बालदेव जी से पूछते हैं :

'डागडर बाबू का नौकर सौ दुसाध है और डागडर बाबू कौन जात है? दुसाध का बनाया हुआ खाते हैं।'[5]

गाँव के जातिवादी उन्माद के द्रष्टव्यों से यह उपन्यास भरा पड़ा है ''मेरीगंज एक बड़ा गाँव है, बारहों वर्ण के लोग रहते हैं''[6]

सभी जाति वाले दूसरी जाति वालों से घृणा करते हैं, जैसे –''राजपूतों और कायास्थों में पुस्तैनी मन मुटाव और झगड़े होते रहे हैं। ब्रम्हाणों की संख्या कम है, इसलिए वे हमेशा तीसरी शक्ति का काम करते हैं। अभी कुछ दिनों से यादव के दल ने भी जोर पकड़ा है।''[7]

कथाकार ने लोक संस्कृति मूलक समाज के गठन के लिए पात्रों के स्व को समाज में विलीन कर दिया है तभी प्रशांत का यह कथन दृष्टव्य है, 'मैं प्यार की खेती करना चाहता हूँ। ..... मैं साधना करूंगा, ग्रामवासिनी भारत माता के मैले आंचल के तले।'[8]

कलंक मुक्ति में श्री आनंद लोक व्यवहार में ही घर आए, मेहमानों का लोकगीत से स्वागत करती है उनसे हंसी मजाक करती है और उन्हें खिला–पिला कर बिदा करती है।[9]

मेरीगंज गाँव में मनाए जाने वाले पर्व त्यौहारों मे होली का एक चित्रण प्रस्तुत है, 'डाक्टर को भवभूति के माधव मालती की याद आती है। होली को पहले मदनोत्सव कहा जाता था। आम की मंजरियों से मदन की पूजा की जाती थी। इस मदनोत्सव के दिन माधव और मालती की आँखें चार हुई थी और दोनों प्रेम की डोरी में बंध गए थे। जहाँ राधेश्याम खेरे होली।'[10]

होली गीत को 'फगुआ' कहा जाता है। इन गीतों में जीवन की उछलकूद, हास परिहास तथा श्रृगांरिक उद्दामवेग का स्थूल प्रवाह होता है, तो दूसरी तरफ व्यंग वाणी से सामंती व जमींदारी व्यवस्था पर तीखा आघात भी।

उपरोक्त अनुच्छेदों की प्रस्तुति से रेणु जी द्वारा रचित उपन्यासों में निहित सामाजिक रीति–रिवाजों, अंधविश्वासों, परम्पराओं आदि का चित्रण आंचलिक समाज में सामाजिक चेतना उद्वेलित करने की क्षमता का प्रणयन करने में सफल हुआ है।

अंचल विशेष के लोक जीवन और लोक संस्कृति को आधार बनाकर समाज में नयी चेतना भरने के लिए फणीश्वर नाथ रेणु का नामोल्लेख होता है। अपने उपन्यासों के माध्यम से उन्होंने समाज में व्याप्त अंधविश्वास, अशिक्षा, जादू टोना, भूत–प्रेत आदि की समस्याओं पर स्वाभाविक्ता से प्रकाश डाला। उन्होंने प्रशांत एवं जितेन्द्र जैसे सजग और शिक्षित पात्रों को पिछड़े क्षेत्रों में भेजकर सशक्त समाज बनाने की परिकल्पना की है।

फणीश्वर नाथ रेणु के उपन्यासों मे सामाजिक चेतना का उद्देश्य नगरीय सभ्यता और जागृति से दूर ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त सामाजिक समस्याओं की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व समाज में व्याप्त अव्यवस्थाओं के बीच जीवन जीने को अभिशप्त मानव समाज में कितनी जागृति आ पायी है, इसका आकलन प्रस्तुत शोध आलेख में किया गया है। सरकारी योजनाओं का भरपूर लाभ सामान्य जन को मिल पाना तभी संभव है जब उनमें सामाजिक चेतना विकसित होगी। विद्यालय, अस्पताल, सामान्य मनोरंजन के साधन आदि की व्यवस्था के साथ जन–जन में जागृति लायी जा सकती है। आंचलिक क्षेत्र में सामाजिक व्यवस्था को जीवंत बनाकर ही राष्ट्र का विकास किया जा सकता है।

ग्राम्य जीवन में सामाजिक रीतिरिवाज, अंधविश्वास, जातिगत भेदभाव, लोक व्यवहार परिवेशगत प्रथाएँ, आर्थिक स्थिति, समाज में व्याप्त अशिक्षा, ग्राम का राजनीतिक वातावरण, सांस्कृतिक और धार्मिक आयाम समग्रता मे चित्रित होकर राष्ट्रीय धरोहर के रूप में पाठकों के समक्ष उपस्थित हो जाता है। अतीत का अवलोकन वर्तमान में सुधार करने की गुंजाइश और भविष्य को मंगलप्रद बनाने हेतु रेणु के उपन्यासों का महत्व अक्षुण है।

निष्कर्ष :

रेणु के उपन्यासों के अवलोकन उपरांत यह निष्कर्ष सामने आता है कि उन्होंने रीतितिवाज उत्सव त्यौहार, सामाजिक नियम, आपसी भेदभाव के चित्रण के साथ–साथ लोकोत्सव में गायन की जाने वाली गीतों का भी सम्यक वर्णन किया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत भी गाँव में व्याप्त आर्थिक विसंगति का वर्णन हुआ है। आर्थिक तंगी के कारण नैतिक मूल्यों में विघटन की स्थिति निर्मित होती है। भारत में राजनीति के ठेकेदारों ने जनतंत्र के नाम पर पूँजीवाद की स्थापना की है। रेणुजी के उपन्यासों में मानवतावादी चेतना और संवेदना व्याप्त है। 'मैला आँचल' की लक्ष्मी परती परिकथा की ताजमनी जैसी नारियों की त्यागशीलता के साथ–साथ डॉ.प्रशांत और कमला की प्रगतिशीलता का चित्रण कर सामाजिक जीवन के विविध क्रियाकलाप और लोक जीवन की सरसता और माधुर्य का चित्रण करने में फणीश्वर नाथ रेणु को अभूतपूर्व सफलता मिली है।

संदर्भ :

(1) दुबे, हरिशंकर : हिन्दी आंचलिकता का अभ्युदय रेणु के उपन्यास, पृ. 13. ***(2)*** *रेणु, फणीश्वर नाथ : मैला आँचल, पृ. 67.* ***(3)*** *रेणु, फणीश्वर नाथ : मैला आँचल, पृ. 32.* ***(4)*** *रेणु, फणीश्वर नाथ : परती परिकथा, पृ. 94.* ***(5)*** *रेणु, फणीश्वर नाथ : मैला आँचल, पृ. 43.* ***(6)*** *रेणु, फणीश्वर नाथ : मैला आँचल, पृ. 366.* ***(7)*** *रेणु, फणीश्वर नाथ : मैला आँचल, पृ. 13.* ***(8)*** *रेणु, फणीश्वर नाथ : मैला आँचल, भूमिका से।* ***(9)*** *रेणु, फणीश्वर नाथ : कलंक मुक्ति, पृ. 16.* ***(10)*** *रिचर्डस, आई. ए. : प्रिंसपल्स ऑफ रिटरेरी क्रिटिसीज्म, 32.*